1857 का विद्रोहः कारण

नवाबों की छिनती सत्ता

अठारहवीं सदी के मध्य से ही राजाओं और नवाबों की ताकत छिनने लगी थी। उनकी सत्ता और सम्मान, दोनों खत्म होते जा रहे थे। बहुत सारे दरबारों में रेडिंट तैनात कर दिए गए थे। स्थानीय शासकों की स्वतंत्रता घटती जा रही थी। उनकी सेनाओं को भंग कर दिया गया था। उनके राजस्व वसूली के अधिकार व इलाके एक-एक करके छीने जा रहे थे। बहुत सारे स्थानीय शासकों ने अपने हितों की रक्षा के लिए कंपनी के साथ बातचीत भी की। उदाहरण के लिए, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई चाहती थीं कि कंपनी उनक पति की मृत्यु के बाद उनके गोद लिए हुए बेटे को राजा मान ले। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहेब ने भी कंपनी से आग्रह किया कि उनके पिता को जो पेंशन मिलती थी वह मृत्यु के बाद उन्हें मिलने लगे। अपनी श्रेष्ठता और सैनिक ताकत के नशे में चूर कंपनी ने इन निवेदनों को ठुकरा दिया। अवध की रियासत अंग्रेजों के कब्ज में जाने वाली आखिरी रियासतों में से थी। 1801 में अवध पर एक सहायक संधि थोपी गयी और 1856 में अंग्रेजों ने उसे अपने कब्ज में ले लिया। गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ने ऐलान कर दिया कि रियासत का शासन ठीक से नहीं चलाया जा रहा है इसलिए शासन को दुरुस्त करने के लिए ब्रिटिश प्रभुत्व जरूरी है। कंपनी ने मुग़लों के शासन को खत्म करने की भी पूरी योजना बना ली थी। कंपनी द्वारा जारी किए गए सिक्कों पर से मुग़ल बादशाह का नाम हटा दिया गया। 1849 में गवर्नर जनरल डलहौजो ने ऐलान किया कि बहादुर शाह जफ़र की मृत्यु के बाद बादशाह के परिवार को लाल क़िले से निकाल कर उसे दिल्ली में कहीं और बसाया जाएगा। 1856 में गवर्नर-जनरल कैनिंग ने फ़ैसला किया कि बहादुर शाह जफ़र आखिरी मुग़ल बादशाह होंगे। उनकी मृत्यु के बाद उनके किसी भी वंशज को बादशाह नहीं माना जाएगा। उन्हें केवल राजकुमारों के रूप में मान्यता दी जाएगी।

किसान और सिपाही

गाँवों में किसान और जमींदार भारी-भरकम लगान और कर वसूली के सख्त तौर-तरीकों से परेशान थे। बहुत सारे लोग महाजनों से लिया कज नहीं लौटा पा रहे थे। इसके कारण उनकी पीढ़ियों पुरानी जमीनें हाथ से निकलती जा रही थीं। कंपनी के तहत काम करने वाले भारतीय सिपाहियों के असंतोष की अपनी वजह थी। वे अपने वेतन, भत्तों और सेवा शर्तों के कारण परेशान थे। कइ नए नियम उनकी धार्मिक भावनाओं और आस्थाओं को ठेस पहुँचाते थे। उन्हें लगता था कि समुद्र यात्रा से उनका धर्म और जाति भ्रष्ट हो जाएँगे। जब 1824 में सिपाहियों को कंपनी की ओर से लड़ने के लिए समुद्र के रास्ते बर्मा जाने का आदेश मिला तो उन्होंने इस हुक्म को मानने से इनकार कर दिया। उन्हें जमीन के रास्ते से जाने में ऐतराज नहीं था। सरकार का हुक्म न मानने के

कारण उन्हें सख्त सजा दी गई। क्योंकि यह मुद्दा अभी खत्म नहीं हुआ था इसलिए 1856 में कंपनी को एक नया कानून बनाना पड़ा। इस कानून में साफ़ कहा गया था कि अगर कोई व्यक्ति कंपनी की सेना में नौकरी करेगा तो जरूरत पड़ने पर उसे समुद्र पार भी जाना पड़ सकता है। सिपाही गाँवों के हालात से भी परेशान थे। बहुत सारे सिपाही ख़ुद किसान थे। वे अपने परिवार गाँवों में छोड़कर आए थे। लिहाजा, किसानों का गुस्सा जल्दी ही सिपाहियों में भी फैल गया।

अफ़वाहें और भविष्यवाणियाँ

तरह-तरह की अफ़वाहों और भविष्यवाणियों के जरिए लोगों को उठ खड़ा होने के लिए उकसाया जा रहा था। मेरठ से दिल्ली आने वाले सिपाहियों ने बहादुर शाह को उन कारतूसों के बारे में बताया था जिन पर गाय और सुअर की चर्बी का लेप लगा था। उनका कहना था कि अगर वे इन कारतूसों को मुँह से लगाएंगे तो उनकी जाति और मजहब, दोनों भ्रष्ट हो जाएँगे। सिपाहियों का इशारा एन्फ़ील्ड राइफ़ल के उन कारतूसों की तरफ़ था जो हाल ही में उन्हें दिए गए थे। अंग्रजों ने सिपाहियों को लाख समझाया कि ऐसा नहीं है लेकिन यह अफ़वाह उत्तर भारत की छावनियों में जंगल की आग की तरह फैलती चली गई। राइफ़ल इंस्ट्रक्शन डिपो के कमांडेंट कैप्टेन राइट ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि दम दम स्थित शस्त्रागार में काम करने वाले "नीची जाति" के एक खलासी ने जनवरी 1857 के तीसरे ह.फ्ते में एक ब्राह्मण सिपाही से पानी पिलाने के लिए कहा था। ब्राह्मण सिपाहो ने यह कहकर अपने लोटे से पानी पिलाने से इनकार कर दिया कि "नीची जाति" के छूने से लोटा अपवित्र हो जाएगा। रिपोर्ट के मुताबिक, इस पर खलासी ने जवाब दिया कि "जल्दी ही तुम्हारी जाति भ्रष्ट होने वाली है क्योंकि अब तुम्हें गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूसां को मुँह से खींचना पड़ेगा।" इस रिपोर्ट की विश्वसनीयता के बारे में कहना मुश्किल है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि जब एक बार यह अफ़वाह फैलना शुरू हुई तो अंग्रज अफ़सरों के तमाम आश्वासनों के बावजूद इसे ख़त्म नहीं किया जा सका और इसने सिपाहियों में एक गहरा गुस्सा पैदा कर दिया। 1857 की शुरुआत तक उत्तर भारत में यही एक अफ़वाह नहीं थी। यह अफ़वाह भी जोरों पर थी कि अंग्रज सरकार ने हिंदुओं और मुसलमानों की जाति और धर्म को नष्ट करने के लिए एक भयानक साजिश रच ली है। अफ़वाह फैलाने वालों का कहना था कि इसी मकसद को हासिल करने के लिए अंग्रजों ने बाजार में मिलने वाले आटे में गाय और सुअर की हड्डियों का चूरा मिलवा दिया है। शहरों और छावनियों में सिपाहियों और आम लोगों ने आटे को छूने से भी इनकार कर दिया। चारों तरफ़ इस आशय का भय और शक बना हुआ था कि अंग्रज हिंदुस्तानियों को ईसाई बनाना चाहते हैं। यह बेचैनी बहुत तजो से फैली। ब्रिटिश अफ़सरों ने लोगों को अपनी बात का यकीन दिलाने का भरसक प्रयास किया लेकिन नाकामयाब रहे। इन्हीं बेचैनियों ने लोगों को अगला कदम उठाने के लिए झिंझोड़ा। किसी बड़ी कार्रवाई के आह्वान को

इस भविष्यवाणी से और बल मिला कि प्लासी की जंग के 100 साल पूरा होते ही 23 जून 1857 को अंग्रजो राज ख़त्म हो जाएगा। बात सिर्फ़ अफ़वाहों तक ही सीमित नहीं थी। उत्तर भारत के विभिन्न भागों से गाँव-गाँव में चपातियाँ बँटने की भी रिपोर्टें आ रही थीं। बताते हैं कि रात में एक आदमी आकर गाँव के चौकीदार को एक चपाती तथा पाँच और चपातियाँ बनाकर अगले गाँवों में पहुँचाने का निर्देश दे जाता था। और यह सिलसिला यूँ ही चलता जाता था। चपातियाँ बाँटने का मतलब और मक़सद न उस समय स्पष्ट था और न आज स्पष्ट है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि लोग इसे किसी आने वाली उथल-पुथल का संकेत मान रहे थे।

लोग अफ़वाहा में विश्वास क्यों कर रहे थे?

अगर 1857 की इन अफ़वाहों को 1820 के दशक से अंग्रजों द्वारा अपनाई जा रही नीतियों के संदर्भ में देखा जाए तो उनका मतलब जयादा आसानी से समझा जा सकता है। गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक के नेतृत्व में उसी समय से ब्रिटिश सरकार पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी विचारों और पश्चिमी संस्थानों के जरिए भारतीय समाज को "सुधारने" के लिए खास तरह की नीतियाँ लागू कर रही थी। भारतीय समाज के कुछ तबकों की सहायता से उन्होंने अंग्रजो माध्यम के स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित किए थे जिनमें पश्चिमी विज्ञान और उदार कलाओं (Liberal Arts) के बारे में पढ़ाया जाता था। अंग्रजों ने सती प्रथा को ख़त्म करने (1829) और हिंदू विधवा विवाह को वैधता देने के लिए क़ानून बनाए थे। शासकीय दुर्बलता और दत्तकता को अवैध घोषित कर देने जैसे बहानों केजरिए अंग्रजों ने न केवल अवध बल्कि झाँसी और सतारा जैसी बहुत सारी दूसरी रियासतों को भी क़ब्ज में ले लिया था। जैसे ही ऐसी कोई रियासत या इलाका उनके क़ब्ज में आता था, वहाँ अंग्रज अपने ढंग की शासन व्यवस्था, अपने क़ानून, भूमि विवादों के निपटारे की अपनी पद्धति और भूराजस्व वसूली की अपनी व्यवस्था लागू कर देते थे। उत्तर भारत के लोगों पर इन सब कार्रवाइयों का गहरा असर हुआ। लोगों को लगता था कि वे अब तक जिन चीजों की क़द्र करते थे, जिनको पवित्र मानते थे चाहे राजे-रजवाड़े हों, सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाज हों या भूस्वामित्व, लगान अदायगी की प्रणाली हो उन सबको ख़त्म करके एक ऐसी व्यवस्था लागू की जा रही थी जो जयादा हृदयहीन, परायी और दमनकारी थी।

सुधारों पर प्रतिक्रिया

अंग्रेजों को लगता था कि भारतीय समाज को सुधारना जरूरी है। सती प्रथा को रोकने और विधवा विवाह को बढ़ावा देने के लिए कानून बनाए गए। अंग्रेजो भाषा की शिक्षा को जमकर प्रोत्साहन दिया गया। 1830 के बाद कंपनी ने ईसाई मिशनरियों को खुलकर काम करने और यहाँ तक कि जमीन व संपत्ति जुटाने की भी छूट दे दी। 1850 में एक नया कानून बनाया गया जिससे ईसाई धर्म को अपनाना और आसान हो गया। इस कानून में प्रावधान किया गया था कि अगर कोई

भारतीय व्यक्ति ईसाई धर्म अपनाता है तो भी पुरखों की संपत्ति पर उसका अधिकार पहले जैसा ही रहेगा। बहुत सारे भारतीयों को यकीन हो गया था कि अंग्रेज उनका धर्म, उनके सामाजिक रीति-रिवाज और परंपरागत जीवनशैली को नष्ट कर रहे हैं। दूसरी तरफ ऐसे भारतीय भी थे जो मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में बदलाव चाहते थे।

सैनिक विद्रोह जनविद्रोह बन गया

यद्यपि शासक और प्रजा के बीच संघर्ष कोई अनोखी बात नहीं होती लेकिन कभी-कभी ये संघर्ष इतने फैल जाते हैं कि राज्य की सत्ता छिन्न-भिन्न हो जाती है। बहुत सारे लोग मानने लगे हैं कि उन सबका शत्रु एक है। इसलिए वे सभी कुछ करना चाहते हैं। इस तरह की स्थिति में हालात अपने हाथ में लेने के लिए लोगों को संगठित होना पड़ता है, उन्हें संचार, पहलक़दमी और आत्मविश्वास का परिचय देना होता है। भारत के उत्तरी भागों में 1857 में ऐसी ही स्थिति पैदा हो गई थी। फ़तह और शासन के 100 साल बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को एक भारी विद्रोह से जूझना पड़ रहा था। मई 1857 में शुरू हुई इस बग़ावत ने भारत में कंपनी का अस्तित्व ही खतरे में डाल दिया था। मेरठ से शुरू करके सिपाहियों ने कई जगह बग़ावत की। समाज के विभिन्न तबकों के असंख्य लोग विद्रोही तेवरों के साथ उठ खड़े हुए। कुछ लोग मानते हैं कि उन्नीसवीं सदी में उपनिवेशवाद के खिलाफ दुनिया भर में यह सबसे बड़ा सशस्त्र संघर्ष था।

मेरठ से दिल्ली तक

29 मार्च 1857 को युवा सिपाही मंगल पांडे को बैरकपुर में अपने अफ़सरों पर हमला करने के आरोप में फाँसी पर लटका दिया गया। चंद दिन बाद मेरठ में तैनात कुछ सिपाहियों ने नए कारतूसों के साथ फ़ौजी अभ्यास करने से इनकार कर दिया। सिपाहियों को लगता था कि उन कारतूसों पर गाय और सूअर की चर्बी का लेप चढ़ाया गया था। 85 सिपाहियों को नौकरी से निकाल दिया गया। उन्हें अपने अफ़सरों का हुक्म न मानने के आरोप में 10-10 साल की सजा दी गई। यह 9 मई 1857 की बात है। मेरठ में तैनात दूसरे भारतीय सिपाहियों की प्रतिक्रिया बहुत जबरदस्त रही। 10 मई को सिपाहियों ने मेरठ की जेल पर धावा बोलकर वहाँ बंद सिपाहियों को आजाद करा लिया। उन्होंने अंग्रेज अफ़सरों पर हमला करके उन्हें मार गिराया। उन्होंने बंदूक और हथियार कब्ज में ले लिए और अंग्रेजों की इमारतों व संपत्तियों को आग के हवाले कर दिया। उन्होंने **फिरंगियों** के खिलाफ युद्ध का ऐलान कर दिया। सिपाही पूरे देश में अंग्रेजों के शासन को खत्म करने पर आमादा थे। लेकिन सवाल यह था कि अंग्रेजों के जाने के बाद देश का शासन कौन चलाएगा। सिपाहियों ने इसका भी जवाब ढूँढ़ लिया था। वे मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र को देश का शासन सौंपना चाहते थे। मेरठ के कुछ सिपाहियों की एक टोली 10 मई की रात को घोड़ों पर सवार होकर मुँह अँधेरे ही दिल्ली पहुँच गई। जैसे ही उनके आने की ख़बर फैली, दिल्ली में तैनात

टुकड़ियों ने भी बगावत कर दी। यहाँ भी अंग्रेज अफसर मारे गए। देशी सिपाहियों ने हथियार व गोला बारूद कब्ज में ले लिया और इमारतों को आग लगा दी। विजयी सिपाही लाल किले की दीवारों के आसपास जमा हो गए। वे बादशाह से मिलना चाहते थे। बादशाह अंग्रेजों की भारी ताकत से दो-दो हाथ करने को तैयार नहीं थे लेकिन सिपाही भी अड़े रहे। आखिरकार वे जबरन महल में घुस गए और उन्होंने बहादुर शाह ज़फ़र को अपना नेता घोषित कर दिया। बूढ़े बादशाह को सिपाहियों की यह माँग माननी पड़ी। उन्होंने देश भर के मुखियाओं और शासकों को चिट्ठी लिखकर अंग्रेजों से लड़ने के लिए भारतीय राज्यों का एक संघ बनाने का आह्वान किया। बहादुर शाह के इस एकमात्र कदम के गहरे परिणाम सामने आए। अंग्रेजों से पहले देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर मुग़ल साम्राज्य का ही शासन था। ज्यादातर छोटे शासक और रजवाड़े मुग़ल बादशाह के नाम पर ही अपने इलाकों का शासन चलाते थे। ब्रिटिश शासन के विस्तार से भयभीत ऐसे बहुत सारे शासकों को लगता था कि अगर मुग़ल बादशाह दोबारा शासन स्थापित कर लें तो वे मुग़ल आधिपत्य में दोबारा अपने इलाकों का शासन बेफिक्र होकर चलाने लगेंगे। अंग्रेजों को इन घटनाओं की उम्मीद नहीं थी। उन्हें लगता था कि कारतूसों के मुद्दे पर पैदा हुई उथल-पुथल कुछ समय में शांत हो जाएगी। लेकिन जब बहादुर शाह ज़फ़र ने बग़ावत को अपना समर्थन दे दिया तो स्थिति रातोरात बदल गई। अकसर ऐसा होता है कि जब लोगों को कोई रास्ता दिखाई देने लगता है तो उनका उत्साह और साहस बढ़ जाता है। इससे उन्हें आगे बढ़ने की हिम्मत, उम्मीद और आत्मविश्वास मिलता है।

बग़ावत फैलने लगी

जब दिल्ली से अंग्रेजों के पैर उखड़ गए तो लगभग एक हफ्ते तक कहीं कोई विद्रोह नहीं हुआ। जाहिर है ख़बर फैलने में भी कुछ समय तो लगना ही था। लेकिन फिर तो विद्रोहों का सिलसिला ही शुरू हो गया। एक के बाद एक, हर रेजिमेंट में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया और वे दिल्ली, कानपुर व लखनऊ जैसे मुख्य बिंदुओं पर दूसरी टुकड़ियों का साथ देने को निकल पड़े। उनकी देखा-देखी कस्बों और गाँवों के लोग भी बग़ावत के रास्ते पर चलने लगे। वे स्थानीय नेताओं, जमींदारों और मुखियाओं के पीछे संगठित हो गए। ये लोग अपनी सत्ता स्थापित करने और अंग्रेजों से लोहा लेने को तैयार थे। स्वर्गीय पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब कानपुर के पास रहते थे। उन्होंने सेना इकट्ठा की और ब्रिटिश सैनिकों को शहर से खदेड़ दिया। उन्होंने खुद को पेशवा घोषित कर दिया। उन्होंने ऐलान किया कि वह बादशाह बहादुर शाह जफ़र के तहत गवर्नर हैं। लखनऊ की गद्दी से हटा दिए गए नवाब वाजिद अली शाह के बेटे बिरजिस क़द्र को नया नवाब घोषित कर दिया गया। बिरजिस क़द्र ने भी बहादुर शाह ज़फ़र को अपना बादशाह मान लिया। उनकी माँ बेगम हज़रत महल ने अंग्रेजों के खिलाफ़ विद्रोहों को बढ़ावा देने में बढ़-चढ़कर

हिस्सा लिया। झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई भी विद्रोही सिपाहियों के साथ जा मिलीं। उन्होंने नाना साहेब के सेनापति ताँत्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेजों को भारी चुनौती दी। मध्यप्रदेश के मांडला क्षेत्र में, राजगढ़ की राजी अवन्ति बाई लोधी ने 4,000 सैनिकों की फौज तैयार की और अंग्रेजों के खिलाफ उसका नेतृत्व किया क्योंकि ब्रिटिश शासन ने उनके राज्य के प्रशासन पर नियंत्रण कर लिया था। विद्रोही टुकड़ियों के सामने अंग्रेजों की संख्या बहुत कम थी। बहुत सारे मोर्चों पर उनकी जबरदस्त हार हुई। इससे लोगों को यक़ीन हो गया कि अब अंग्रेजों का शासन खत्म हो चुका है। अब लोगों को विद्रोहों में कूद पड़ने का गहरा आत्मविश्वास मिल गया था। खासतौर से अवध के इलाके में चौतरफा बग़ावत की स्थिति थी। 6 अगस्त 1857 को लेफ्टिनेंट कर्नल टाइटलर ने अपने कमांडर-इन-चीफ़ को टेलीग्राम भेजा जिसमें उसने अंग्रेजों के भय को व्यक्त किया था : "हमारे लोग विरोधियों की संख्या और लगातार लड़ाई से थक गए हैं। एक-एक गाँव हमारे खिलाफ़ है। जमींदार भी हमारे खिलाफ़ खड़े हो रहे हैं।" इस दौरान बहुत सारे महत्वपूर्ण नेता सामने आए। उदाहरण के लिए, फ़ैजाबाद के मौलवी अहमदुल्ला शाह ने भविष्यवाणी कर दी कि अंग्रेजों का शासन जल्दी ही खत्म हो जाएगा। वह समझ चुके थे कि जनता क्या चाहती है। इसी आधार पर उन्होंने अपने समर्थकों की एक विशाल संख्या जुटा ली। अपने समर्थकों के साथ वे भी अंग्रेजों से लड़ने लखनऊ जा पहुँचे। दिल्ली में अंग्रेजों का सफ़ाया करने के लिए बहुत सारे ग़ाजो यानी धर्मयोद्धा इकट्ठा हो गए थे। बरेली के सिपाही बख्त खान ने लड़ाकों की एक विशाल टुकड़ी के साथ दिल्ली की ओर कूच कर दिया। वह इस बगावत में एक मुख्य व्यक्ति साबित हुए। बिहार के एक पुराने जमींदार कुँवर सिंह ने भी विद्रोही सिपाहियों का साथ दिया और महीनों तक अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी। तमाम इलाकों के नेता और लड़ाके इस युद्ध में हिस्सा ले रहे थे।